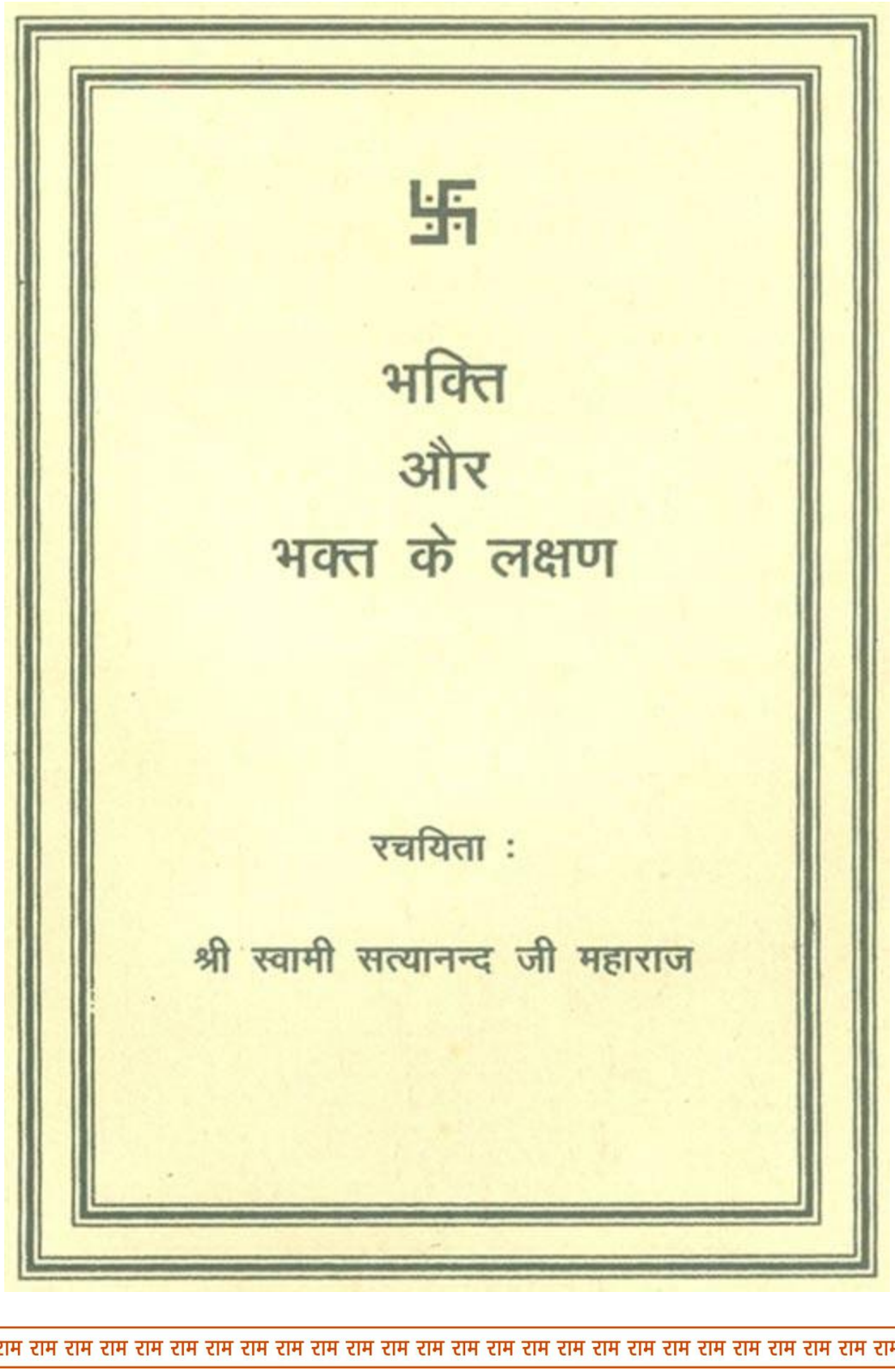
卐
भक्ति
और
भक्त के लक्षण
रचयिता :
श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज

भक्ति और भक्त के लक्षण

Author: Shree Swami Satyanand Ji Maharaj Shree Ram Sharnam, New Delhi

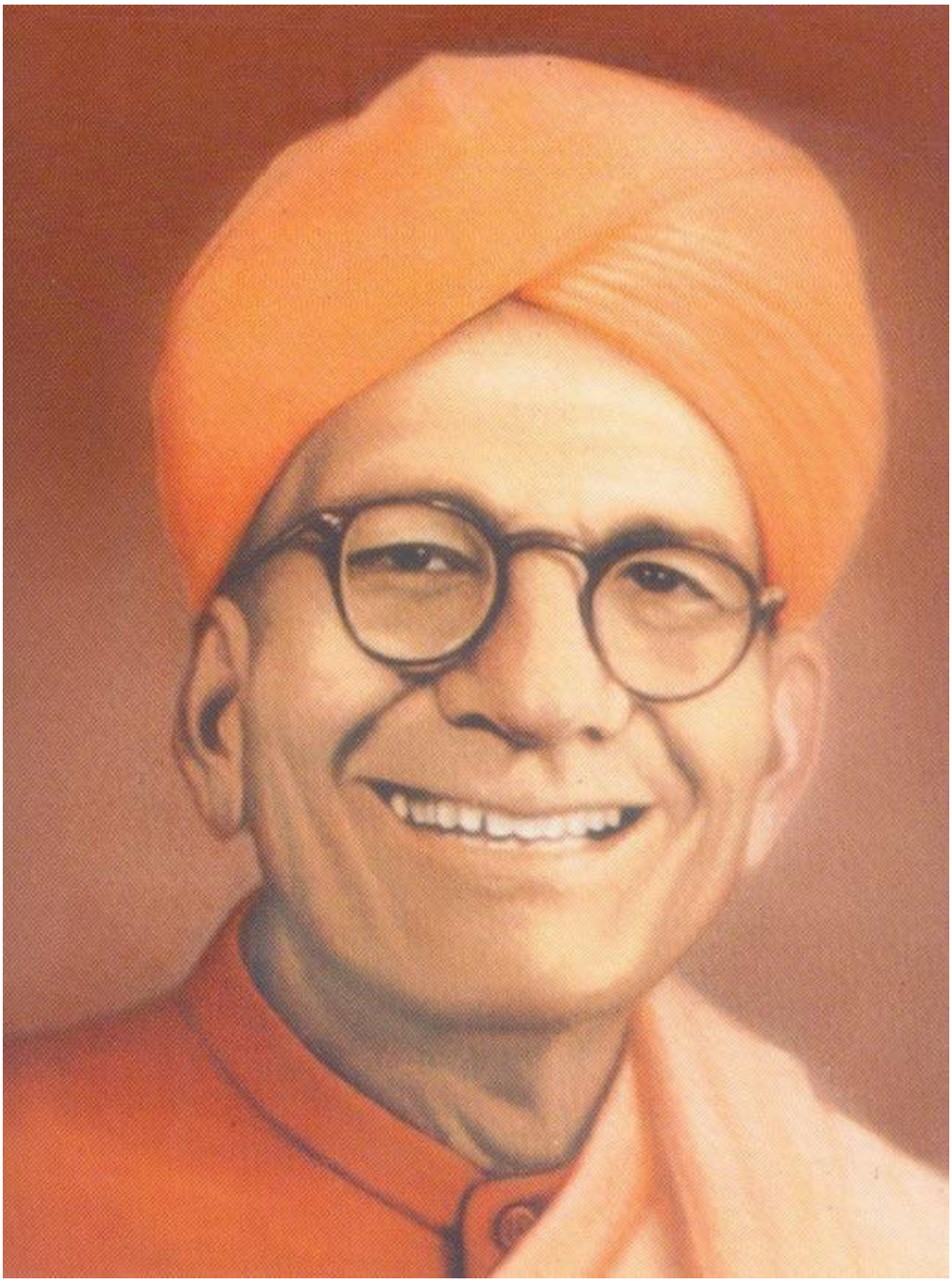

Author: Shree Swami Satyanand Ji Maharaj Shree Ram Sharnam, New Delhi

विषय सूची

	विषय		पृष्ठ
१.	प्राक्कथन	....	१
२.	भक्ति का प्राथमिक प्रकार	....	३
३.	भक्त के लक्षण	....	८

प्राक्कथन

धर्म में भक्ति-भाव, एक बड़ा उत्तम अंग है। इस के बिना धर्मवाद रस, सार और सौन्दर्य रहित, मन्तव्यों का कोरा कलेवर ही रह जाता है। आस्तिक भावों के भव्य भवन की सुदृढ़ नींव भक्ति ही है। आत्मवाद के महा मन्दिर में प्रवेश करने के इच्छुक जन के लिए, एक मात्र मार्ग, भगवती भक्ति ही कही गई है। देह-गत चेतन का सर्वदेश-गत परम चैतन्य से सम्बन्ध जोड़ने का सुदृढ़ सूत्र भक्ति-मार्ग है। भक्ति-भाव वह स्वादुतम रस है जिस के आस्वादन कर लेने पर, मनुष्य को, मतों के अन्य वाद-विवाद, निरे नीरस लगने लगते हैं।

श्री भगवान् कृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में, धर्म के सब अंगों के साथ, जीवन को उच्च बनाने के सब साधनों के साथ तथा कर्म-बन्धन

और पाप-पाश काटने के सब उपायों के साथ भक्ति को प्रधानता दी है। श्री भगवान् के श्री मुख-वाक्यों से ही, भगवती भक्ति के प्रकार और भागवत भक्त के लक्षण इस पुस्तिका में वर्णित किये गये हैं। भगवान् श्री कृष्ण द्वारा प्रदर्शित, भक्त के लक्षण कितने उत्तम हैं, मननशील मनुष्य के मन में, यह बात सुगमता से समा सकती है। किसी से द्वेष न करना, दीन-दुःखी जन पर करुणावान् होना, शत्रु तथा मित्र में समदृष्टिपन और परार्थ, अपने निवास स्थान की ममता तक का त्याग, ये ऐसे भक्त लक्षण हैं जो संसार के साहित्य में अपनी उपमा आप ही हैं। श्रीमद्भगवद्गीता के बारहवें अध्याय के श्लोकों का ही इस में स्पष्टीकरण है। भगवद्भक्तों को बड़े भावपूर्वक इस का मनन, पाठ और आराधन करना चाहिए।

सत्यानन्द

भक्ति का प्राथमिक प्रकार

श्री भगवान् ने कहा :—

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते।।१।।

तथा जो भक्त जन, मेरे परायण हुए, सब कर्मों को मुझ में अर्पण कर के, अनन्ययोग-अनन्य, परा भक्ति से ही मुझ को चिन्तन करते हुए मुझ को आराधते हैं, मेरा भजन, ध्यान, चिन्तन और कीर्तन करते हैं—

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्।।२।।

हे अर्जुन, मुझ में चित्त लगाये हुए उन अनन्य

राम राम

४ भक्ति का प्राथमिक प्रकार

प्रेमियों का, मैं मृत्युमय संसार-सागर से तुरन्त उद्धार-कर्ता हो जाता हूँ।

जो जन एक मन हो कर अनन्य भक्ति योग से मेरी आराधना करते हैं उन अनन्य भक्तों को मैं मरण-संसार समुद्र से शीघ्र पार कर देता हूँ—जन्म मरण के काल सागर से वे शीघ्र पार पा जाते हैं। इस लिए—

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः।।३।।

मुझ में ही — अनन्य भक्ति से, मन को लगा। मुझ में बुद्धि—तर्क-वितर्क को स्थापित कर। इस के ऊपर, ऐसा कर लेने पर, मुझ में ही तू निवास करेगा, मुझ में लीनता लाभ कर लेगा। इस में कुछ भी संशय नहीं है।

अनन्य भक्ति से, मन बुद्धि को भगवान् के सच्चिदानन्द स्वरूप में लगा कर ध्यान, चिन्तन करने से, उपासक, परमेश्वर के ही परम धाम को प्राप्त हो जाता है, यह संशय-रहित सत्य है। यह पहली अनन्य भक्ति है।

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय।।४।।

यदि तू मुझ में, अनन्य भक्ति से, मन को स्थिर स्थापना करने को समर्थ नहीं है तो हे अर्जुन ! तू भगवान् के मंगलमय नाम के तथा गुणों के बार बार जप-चिन्तन रूप अभ्यास योग से मुझ को प्राप्त करने की इच्छा कर।

भगवान् के नाम का बार बार जप करना, कीर्तन करना और भगवान् के गुणों को बार बार चिन्तन करना, यह दूसरी अभ्यासात्मिका भक्ति है। इस

से अभ्यासी भक्त परमेश्वर के परम पावन स्वरूप को प्राप्त कर लेता है।

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि।।५।।

तू यदि ऊपर कहे अभ्यास करने में भी असमर्थ है तो मेरे लिए कर्म करने में परायण हो जा। मेरे लिए कर्मों को करता हुआ भी, तू सिद्धि को, परम धाम को, प्राप्त हो जायेगा।

सत्य, संयम, सेवा, पर-हित, परोपकार, दया, दान, दीन-दुःखी रक्षण-पालनादि, निःस्वार्थ भाव से किये गये शास्त्र निर्दिष्ट कर्म, भगवान् के लिए कर्म हैं। उन का प्रेरक परम पुरुष ही है। इस लिए वे कर्म उस के ही कर्म हैं। यह भगवद्-योगरूपा तीसरी भक्ति है।

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्।।६।।

यदि इस को भी करने को तू अशक्त है तो आत्म-संयम वाला और मेरे योग-निर्दिष्ट कर्म करने में परायण तू सब कर्मों के फल का त्याग कर।

कर्मों के फल की कामना न कर। कर्तव्य समझ कर कर्म कर। यह निष्काम-कर्म-स्वरूपा चतुर्थी भगवद्भक्ति है।

श्रेयो हिज्ञानमभ्यासाज् ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्।।७।।

निश्चय से, कोरे अभ्यास से, अभ्यास योग रूप ज्ञान श्रेष्ठ है, ऐसे ज्ञान से अनन्य भक्ति रूप ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यान से भगवान् की शरण में सर्वकर्म-समर्पण रूप, कर्म-फल-त्याग विशेष है।

ऐसे त्याग से तुरन्त ही परम शान्ति हो जाती है।

ऊपर वर्णित चतुर्था भक्ति की आराधना करने वाला जन ही भागवत जन है, भगवत्परायण है, भगवदाश्रित है और भगवान् का परम प्यारा भक्त है। ऐसे निष्ठावान् भक्त के लक्षण अगले श्लोकों में श्री कृष्ण भगवान् ने प्रदर्शित किये हैं।

श्री भगवान् ने कहा –

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी।।८।।

जो सब प्राणियों से द्वेष-वैर भाव-रहित, केवल कर्तव्य बुद्धि से कार्य करने वाला, सब का मित्र-पक्षपात से ऊपर और दीन-दुखी जन को देख कर निःस्वार्थ भाव से करुणावान्, इसी

प्रकार ममता-रहित-परहित-हेतु स्वार्थ-त्यागी, निरहंकारी, दुःख-सुख में सम और क्षमावान सहन-शील है—

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।६।।

जो कर्म-योग-युक्त योगी, सब अवस्थाओं में सदा सन्तुष्ट रहता है तथा उद्योग से जो मिले, जैसा प्राप्त हो, उसी में सदा सन्तोषी बना रहता है—विषम अवस्था में डांवांडोल नहीं होता और अनुचित उपायों से आजीविका नहीं चलाता है—आत्म संयमी है, दृढ़ निश्चय वाला है—आत्मा, परमात्मा तथा परलोक में पूर्ण विश्वास रखता है, आस्तिक है और मुझ में अर्पित मन-बुद्धि है—मन, बुद्धि पूर्वक मुझ में समर्पित है, सर्वथा संशय-रहित है—वह मेरा भक्त

राम राम

१० भक्त के लक्षण

मेरा प्यारा है।

ऊपर कहे हुए भक्त के लक्षणों में प्रथम लक्षण किसी भी जन के साथ द्वेष न करना है, वैर बुद्धि न रखना है। दूसरा लक्षण सब जनों से मित्र भाव से बरतना है। तीसरा लक्षण करुणा-युक्त होना है। ये तीनों लक्षण पर से, जनता से तथा समाज के साथ सम्बन्ध रखते हैं। जो जन भगवद्भक्त है उस की पहली पहचान है कि वह किसी भी जन से द्वेष, वैर और हिंसा भाव न रखता हो, केवल कर्तव्य बुद्धि से कर्म करता हो। दूसरी पहचान है, भगवान् का भक्त सब जनों का मित्र हो, पक्षपात में न पड़े, न्यायानुसार चले और सब जनों में समवृत्ति से बरताव करे। दीन, हीन, दुःखी, पीड़ित तथा परित्रस्त जन को देख कर पसीज जाना, उस के कष्ट-क्लेश से मन में परिताप अनुभव करना करुणा है। भगवद्भक्त की तीसरी पहचान उस का करुणा भाव है।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः।।१०।।

जिस भक्त जन से, कोई भी जन उद्वेग-त्रास को प्राप्त नहीं होता और जो आप भी किसी जन से त्रास को प्राप्त नहीं होता है—सब से सदा निडर, अकम्प ही बना रहता है और जो अनुकूल वस्तु की प्राप्ति से हर्ष, दूसरों की उन्नति देख कर अमर्ष-सन्ताप करना, ऐसे हर्ष, अमर्ष, भय, उद्वेगों से मुक्त है वह भक्त मेरा प्यारा है।

भक्त जन दयालु हो, उस से कोई भी जन त्रस्त न होवे परन्तु ऐसा धीर, सुवीर भी होवे कि किसी भी क्रूरकर्मी से वह त्रस्त न हो पाये। वह अमर्ष से, पर उन्नति के डाह से रहित—निर्भय और शान्त हो।

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।११।।

राम राम

१२ भक्त के लक्षण

जो जन किसी अन्य वस्तु व व्यक्ति के आश्रित नहीं है, भीतर बाहर से पवित्र है, सावधान, चतुर है, कार्यकुशल है, पक्षपात से रहित है, मानस वेदना से मुक्त है तथा मन, वाणी,देह द्वारा होते हुए सब कर्मों का—उन के कर्तापन के अभिमान का, त्यागी है वह मेरा भक्त मेरा प्यारा है।

वही भक्त, भगवान् का प्यारा है जो अनपेक्ष-पराश्रित नहीं है, स्वावलम्बी है, भगवान् के विधान पर पूरा भरोसा रखता है और स्वकर्तव्य कर्मों के करने में जो चतुर है और जो सेवा, परोपकार, परहित आदि सुकृत कर्म कर के उन के कर्तृत्व के अभिमान का त्यागी है।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः।।१२।।

जो भक्त जन पदप्रतिष्ठा पदार्थ आदि की प्राप्ति पर न कभी हर्ष करता है, न वैरी विरोधी, हानिकर व्यक्ति से द्वेष करता है, न नष्ट वस्तु की, वस्तु के अभाव की चिन्ता लाता है, न इष्ट पदार्थों की कामना करता है, शुभ-अशुभ संयोग की स्तुति-निन्दा का त्यागी है और जो भक्ति-युक्त है—चतुर्था भक्ति में से, एक ही साधनावान् है। वह भक्त मेरा प्यारा है।

हर्ष-शोक से रहित जन, कामनाओं का संयमी और शुभाशुभ के संयोग का न अभिनन्दन न निन्दन करने वाला सम्यक् दृष्टि भक्त ही भगवान् का प्यारा होता है।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समःसङ्.गविवर्जितः।।१३।।

राम राम

१४ भक्त के लक्षण

जो समबुद्धि भक्त शत्रु में और मित्र में सम भाव वाला है और मान-अपमान में सम है तथा शीत-उष्ण, सुख-दुःखादि द्वन्द्वों में सम है और सब वस्तु-संयोग में आसक्ति रहित है।

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः।।१४।।

जो स्वनिन्दा स्तुति समान समझता है, मनन-शील है—वाचाल नहीं है, जिस-किस प्रकार से सन्तुष्ट है—जिस-किस अवस्था—हानि-लाभ में प्रसन्न रहता है, सेवा, सहायता, परहित के हेतु निवास स्थान की ममता से भी रहित है, स्थिर-बुद्धि है और भक्तियुक्त है वह पुरुष मेरा प्यारा है।

शत्रुता करने वाले को शत्रु न समझना बड़ा उच्च भाव है परन्तु शत्रु में, मित्र में समभाव रखना, सर्वोच्च

लक्षण है जो भक्त की सर्वश्रेष्ठता प्रकट करता है। जो भी परिस्थिति, अवस्था हो, कर्तव्य कर्म करने पर जो भी मिले और जैसा भी समय आये, उसी में सन्तुष्ट रहना, भक्त की भक्ति भावना का ऊंचा परिचायक चिन्ह है। संचय में से किसी अधिकारी व्यक्ति को कुछ दे देना एक प्रकार का प्रशंसनीय त्याग है परन्तु परार्थ तथा परमार्थ के लिए अपने गृह तक को त्याग देना, भगवद्भक्त का महा त्यागीपन है।

ऊपर कहे गये भक्त के लक्षण, भगवान् के आराधन, चिन्तन, ध्यान तथा स्मरण करने वाले भगवद्जनों को हृदयंगम, अवश्य ही, कर लेने चाहिए, उन को आचार-व्यवहार में लाने के लिए प्रयत्नशील बने रहना चाहिए। परमेश्वर का प्रिय भक्त बनने की यह सर्वश्रेष्ठ साधना है।

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः।।१५।।

और जो भक्त जन श्रद्धायुक्त हैं—आत्मा

राम राम

१६ भक्त के लक्षण

परमात्मा में, परलोक में तथा सद्धर्म में पूर्ण विश्वास रखते हैं, मुझ में परायण हुए, अविचल निश्चय से मेरे आराधन में तत्पर हुए इस, जैसे ऊपर कहे गये, धर्म रूप अमृत को सेवन करते हैं—भक्ति और भक्त के लक्षणों को अपने जीवन में बसाते हैं, वे भक्त मेरे अत्यन्त प्यारे हैं।

- o -